AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

मनुष्य माने जाने का संघर्ष वाया 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा'

ORIGINAL ARTICLE

Author

मो.साजिद हुसैन

वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी

दूरसंचार विभाग, संचार मंत्रालय

पी.एचडी, हिंदी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया

नई दिल्ली, भारत

शोध सार

हिंदी साहित्य अपने विमर्षात्मक विधाओं में उन सभी समुदायों की आवाज को बुलंद करता रहा है जिन्हें समाज अपनी मुख्यधारा में शामिल करने से सकुचाता रहा है। समकालीन हिंदी साहित्य में, विशेषकर उपन्यासों में हाशिये के समुदाय, उनकी परिस्थितियों और पीड़ाओं एवं उनके अधिकारों का अंकन केंद्र में है। हिंदी साहित्य में लैंगिक विभाजन, वर्गगत असमानता सहित अनेकों विमर्शों को मुखरता से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। इस सन्दर्भ में किन्नर समुदाय अथवा विमर्श भी अछूता नहीं रहा है लेकिन उस पर्याप्तता में इस समुदाय को अभिव्यक्ति नहीं मिली है। उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा' इस रिक्तता को कम करता है और इस विमर्श की अभिव्यक्ति संपूर्णता से करने का प्रयास करता है। संवाद शैली में लिखा गया यह उपन्यास एक पुत्र और माँ के बीच पत्रों के माध्यम से आपसी संवाद मात्र नही है बल्कि किन्नर समुदाय और समाज के बीच संवादगत विमर्श है। समाज की समाजिकता से लगभग विस्थापित यह समुदाय कई स्तरों पर वंचित है। यह उपन्यास एक किशोर मन के माध्यम से इस समुदाय को विमर्शों के मध्य में लाने और समाज को इसपर पुनर्विचार करने का अवसर प्रदान करती है। प्रस्तुत शोध किन्नर समुदाय के सन्दर्भ में इस उपन्यास में अभिव्यक्त इन्ही संवादगत विमर्शों की पड़ताल करता है।

मुख्य शब्द

किन्नर विमर्श, संवेदनहीनता, अस्तित्व, लोकापवाद, उपन्यास.

प्रस्तावना

सड़क पर एक खास अंदाज में ताली बजाकर और आवाज लगाकर कर अपनी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने वाला यह तबका किन्नर समुदाय है जिसे सरकारी काग़ज थर्ड जेंडर के रूप में टंकित करता है और समाज गलियों की गाली 'हिजड़ा' कहकर। रुके हुए ट्रैफिक और चलती हुई ट्रेनों में अपनी ज़िन्दगी को नोटों में मांगता हुआ समाज से बहिष्कृत यह तबका आज भी समाज के लिए जुगुप्सा की वजह बना हुआ है। सहानुभूति की नहीं सामाजिक समानता यहाँ बड़ी दूर की कौड़ी साबित होती है। यह बात जानते हुए भी कि हमारी ही तरह इन सब ने अपनी माँ के कोख से नौ महीने बाद ही जन्म लिया है हम उनके मनुष्य होने को इनकार कर देते हैं। यह समुदाय एक लम्बे समय से इस इनकार और वितृष्णा का कोप झेल रहा है। हमारा कथित सभ्य समाज उन्हें न ही सभ्य मानता है और न ही सामाजिक। वह इस तबके को समाज का हिस्सा भर मानने से भी इनकार करता है। यह जानते हुए कि उन्होंने स्वयं अपने जन्म को इस रूप में नहीं चुना है। 'बिना लिंग या अविकसित लिंग के प्राणी मनुष्य नहीं

हैं' इस स्थापना को आंखें मूंदकर हमारा समाज स्वीकार कर बैठा है। वह हमारे समाज का हिस्सा हैं या नहीं है? क्यूँ नहीं है? दरअसल इस मुद्दे पर समाज के स्तर पर चिंतन हुआ ही नहीं है। उनकी मानसिक, दैहिक व्यथा उसकी पीड़ा को समझने की कोई कवायद ही नहीं हुई। दुनिया की तमाम विमर्शों, वर्ण, लिंग, वर्ग और जातिगत व्यवस्था आदि की अनेकानेक बहस–मुबाहिसों में इस 'थर्ड जेंडर' को हाशिये की ही जगह मिली। वे आज भी मनुष्य नहीं समझे जाते। उनके जीने–मरने से कोई फर्क नहीं पड़ता। उसके लिए कोई आंसू नहीं बहाता। उसके हिस्से में केवल और केवल धिक्कार मिलता है। परिवार और समाज दोनों का धिक्कार। उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203–नाला सोपारा' उनकी इसी वस्तुगत स्थिति को अपनी सशक्त आवाज देती है।

अस्तित्व का संकट और सामाजिक बहिष्कार

उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' का मुख्य पात्र विनोद उर्फ़ बिन्नी उर्फ़ बिमली के बहाने दरअसल उनके पहचान के संघर्ष और मनुष्य माने जाने के संघर्ष को शब्दांकित करती है। परिवार और समाज से निकलकर घूरे पर फेंक दिए जाने से उपजी मनोग्रंथि की व्यथा को, उसकी पीड़ा को बिन्नी पत्र में लिखकर अपनी माँ को प्रेषित करता है। यह पत्र दरअसल थर्ड–जेंडर की व्यथा, पीड़ा, आक्रोश और तिरस्कार तथा धिक्कार भरी नारकीय ज़िन्दगी का संवाद है। यह संवाद केवल बिन्नी और उसकी बा (मां) के बीच नहीं है बल्कि अनेकानेक बिन्नी का अपने परिवार से, समाज से संवाद है। यह संवाद उनके पहचान के संकट का संवाद है। यह संवाद उन्हें मनुष्य न माने जाने की व्यथा और संघर्ष का संवाद है। यह संवाद इस सवाल के जवाब पाने का संवाद है कि क्यों मनुष्य होकर भी वे मनुष्य कर्म और सामाजिकता से बहिष्कृत हैं?

जननांग विकलांगता का दोष उनके अस्तित्व के संकट का प्रश्न बन जाता है। "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा दोष नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ पैर नहीं।"[1] अपनी पहचान का यह संकट बिन्नी के लिए सबसे बड़ा संकट है। मनुष्य जीवन में होते हुए भी उसमें नहीं माना जाना सामजिक ही नहीं बल्कि मानसिक पीड़ा को भी जन्म देता है। यह पीड़ा ही उसका संघर्ष है और संघर्ष का संबल भी। अपने अस्तित्व के संकट को दूर करने के लिए बिन्नी उन तमाम उपायों और सवालों से गुजरता है जो इस किन्नर समुदाय कि स्थिति का जनक और पोषक दोनों है। व्यक्तिक, सामजिक और सरकारी उपायों के बारे में सोचते हुए भी वह आशंकित है। वह मानता है कि "जरूरत है सोच बदलने की। सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें घूरे में नहीं फेंकेंगे । ट्रांसजेंडर के खाँचें में नहीं ढकेलेंगे। यह पहचान उन्हें जब किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देगी? किन्नरों के रूप में समाज ने उन्हें उस खाँचें में सदियों पूर्व ढकेल कर रखा हुआ है।"[2] सही है कि यह स्थिति आज की नही है बल्कि सदियों की है। आज भी समाज में उनकी वही पहचान जारी है। समाज आज भी उसे अपनाने में सशंकित है। अपनी आँखे फेरे हुए है। और यही आज थर्ड जेंडर के लिए अस्तित्व का संकट है। अपनी सामाजिक पहचान के लिए वह आज भी जूझता हुआ ही दिखता है। बिन्नी अपने पत्रों में लगातार इस संकट से जूझने और उससे उबरने के उपायों की चर्चा करता है। वह चारो तरफ इस संकट को गहराता हुआ ही देखता है। यहाँ तक कि किन्नर समुदाय के भीतर भी वह उन विवशताओं और संकटों को देखता है जो बाहर के समाज और उसकी प्रथाओं में जगह बनाए हुए है। भले ही वह एक अंधविश्वास के रूप में ही क्यु न हो। "असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनाने में जितनी भूमिका किन्नरों के सन्दर्भ में सामाजिक बहिस्कार–तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरुओं की नहीं। ऊपर से विकल्पहीनता की कुंठा ने उन्हें आंधी का तिनका बना दिया है। आधुनिक होते लोग पिछड़ी परम्पराएं और मान्यताओं में विश्वास नहीं रखते। गुंडागर्दी करने वालों के हाथ में वह अपने शिशु को आशीषने का अधिकार कैसे सौंप सकते हैं?बुजुर्गों की बेसिर पैर की बातें । एक ओर आशीषने का सम्मान तो दूसरी ओर उन्हें कलंक मान घर –परिवार से उनका निष्कासन।"[3] घर परिवार के लिए कलंक माना जाना और उसे बाहर निकाल दिया जाना उसके अस्तित्व के सकट के सबसे बड़े प्रश्न हैं। इस प्रश्न का प्रतीक डाकखाने में टंगा 'पोस्ट बोक्स न. 203–नाला सोपारा' असल में थर्ड–जेंडर की पहचान का प्रतीक बन जाता है जो समाज के बाहर कहीं रख छोड़ा

गया है जिसका परस्परता से, सामाजिकता से कोई जुड़ाव नहीं है। उसका अस्तित्व सभ्य समाज के लिए इतना त्याज्य है कि किसी बिन्नी के पत्र को अपने रिहाइश पते के नाम से भी जोड़ा जाना स्वीकार नहीं।

लोकापवाद का भय

एक परिवार मात्र लोकापवाद के भय से अपने लिंगदोषी पुत्र/पुत्री को निकाल कर बाहर जलालत की दुनियां में उसे दर–दर की ठोकरें खाने के लिए फेंक देता है। उसे इस लोकापवाद का इतना भय है कि अपनी संतान के जिन्दा रहते हुए समाज में उसे मृत घोषित कर देता है। उसकी पहचान समाज से मिटा दी जाती है लेकिन उनका दैहिक अस्तित्व उसी समाज में धिक्कार की चप्पलों से पिटता रहता है। परिवार और समाज के स्तर पर बहिष्कार और धिक्कार उनको मानसिक स्तर पर व्यथित करता है। वे ताउम्र अपनों के बहिष्कार की पीड़ा से ग्रस्त रहते हैं। सहानुभूति और सांत्वना की जगह लांछन और तिरस्कार उनके मानस मन को मथता रहता है। यह ऐसी स्थिति को जन्म देती हैं जहाँ एक दंपत्ति सदैव अपने बच्चे के जन्म को लेकर उहापोह की स्थिति में रहता है। लोकापवाद का यह भय ही है कि 'सजल' के बच्चे की सोनोग्राफी में विशेष ध्यान देकर यह निश्चित किया जाता है कि वह लड़का या लड़की ही हो कोई अन्य नहीं। सोनोग्राफी करने वाले डॉक्टर से यह सवाल कि "वह जरा गौर से देखकर बताये कि उसका जनांग ठीक से विकसित हो रहा है! कोई नुक्स तो नही है। नुक्स हो तो उन्हें स्पष्ट बता दिया जाए। बच्चा गिरवा देंगे वह। अभी समय है।"[4] इस लोकापवाद का भय इतना गहरा व्याप्त है कि एक परिवार और उसके सदस्य उसे अपने घर–परिवार का हिस्सा तक नहीं मानते और एक लांछन के रूप में देखता है। एक ऐसी उग आई अवांच्छित दूब की तरह जिसका अस्तित्व मात्र भी नारकीय अपमान की वजह बन जायेगी, इसीलिए उसे नष्ट कर देना ही उचित है। अपने इस दैहिक अस्तित्व की पहचान ही उनका संघर्ष है। उनका संघर्ष उनके मनुष्य माने जाने का संघर्ष है। बिन्नी अपने अस्तित्व को इन्हीं स्थिति के सम्मुख पाता है और तभी वह अपनी माँ के सवाल कि "खुदानाखास्ता दीकरा अगर वह तेरी औलाद होकर जन्मता और तू उसे घर से बाहर निकालने की विवशता झेलता, बोल, तुझे कैसा लगता? 'दुनिया में आने से पहले उसे रुखसत कर देता।"[5] बिन्नी का यह जवाब आश्चर्यचकित करने वाला नहीं है बल्कि अपने परिवार में उपजे इस तिरस्कार और निष्ठुरता ने उसे इस निष्कर्ष पर पंहुचाया है। इस निष्कर्ष के पीछे उसे अनुभूत उसके परिवार के लोकापवाद का वह भय ही है जिसमें वे लोग अपने ही पुत्र को बाहर निकालने के लिए विवश होते हैं।

मानसिक उद्वेलन

बिन्नी की समस्या और मनःस्थिति दरअसल पूरे किन्नर बिरादरी की है। अपनी बा को लिखे गये सारे पत्र दरअसल उसकी पहचान के संकट और उसके जीवन की व्यथा कथा है। ऐसी व्यथा जिनसे वह समुदाय बाह्य और आंतरिक दोनों स्तरों पर जूझ रहे हैं। बिन्नी एक सामान्य छात्र की तरह स्कूल में पढ़ता है। वह अपनी कक्षा में अव्वल आता है। बड़ा होकर वह अपनी माँ का सपना पूरा करेगा और बड़ा गणितज्ञ बनेगा। लेकिन वह समय नहीं आता। एक दिन किन्नर बिरादरी अपना दावा उस पर कर देती है और उसे अपने साथ ले जाती है। समस्या किन्नर बिरादरी का दावा करना नहीं है बल्कि अपनी संतान के लिए उसके माता–पिता का अपना अधिकार नहीं जताना है। उसे त्याज्य मनना है। वह उन्हें बिन्नी को ले जाने देते हैं। माँ का प्रतिकार भी मन में ही उमड़ता–घुमड़ता है। एक किशोर यह समझ ही नहीं पाता कि आखिर उसके माँ–बाप उसे रोकते क्यों नहीं,अपना अधिकार क्यों नहीं जताते। ऐसे अनेकों प्रश्न उसके मनःस्थिति को उद्विग्न करते हैं। लगातार वह इन विवशताओं के पीछे की वजहों को ढूँढने की कोशिश करता है। पारिवारिक और सामाजिक बहिष्कार, उसके अस्तित्व पर प्रश्न, सभी मिलजुल कर उसे एक जटिल मानसिक स्थिति में पंहुचा देते हैं जो एक किशोर मन के लिए असह्य है। इस व्यथा में स्वयं को प्रश्नांकित करता हुआ उसका मन असाधारण पीड़ा से गुजरता है। वह इस पीड़ा से गुजरते हुए लगातार स्वयं से प्रश्न करता है और इस विरासत से मिले नरक के अभिशाप से बाहर निकलने के विकल्पों की तलाश करता है। अपनी वर्तमान स्थिति और आगे की राह पर मंथन करते हुए कई बार वह सोचता है कि "कौनसा रास्ता चुनूं? हमेशा से चाहता रहा। विरासत में मिले नरक को अभिशाप के रूप में न स्वीकार कर जननांग दोषी, उससे मुक्ति का रास्ता तलाशे। अपना जीवन जीने की पद्धति पर मंथन करे। समाज उसकी मुक्ति के लिए रस्ते नहीं तलाशेगा।"[6] इन सारी संभावनों

को तलाशते हुए भी उसका मन किन्नर समुदाय की इस नियति को ठीक कर पाने या उसके लिए विकल्प ढूँढने में असमर्थ रहता है। इस पीड़ा से उबरना, अपने ही समाज में अपनी पहचान को स्थापित करना उसके लिए असंभव प्रतीत होता है फिर भी उसका किशोर मन पूरे किन्नर समुदाय को एक विकल्प देते हुए अपील करता है कि "स्वयं के अंर्तमन में झांकिए। भीतर दुबके हुए अपने बालपन को याद कीजिए, सुनिए उसके भीतर के रूदन को। शपथ लीजिये यहाँ से लौटकर आप किसी नवजात बच्चे–बच्ची को, किशोर–किशोरी को, युवक–युवती को, जबरन उसके माता–पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे। उससे उसका घर नहीं छीनेंगे। उपहासों से, लात–घूसों से उसे जलील होने की विवशता नहीं सौंपेंगे।"[7]

ऐसा समुदाय जिसे कभी किसी ने रेखांकित ही नहीं किया, पहचाना ही नहीं। वजह यह है कि उनका वजूद ही उनके परिवार में उनकी मृत्यु के साथ होता है। ऐसे ही नहीं है कि बिन्नी के पिता अपने समाज में यह कहते हैं की बिन्नी की आकस्मिक मृत्यु सड़क दुर्घटना में हो गयी। इस मृत्यु के साथ ही बिन्नी उर्फ़ बिमली का जन्म होता है। मृत का अस्तित्व भला क्यों पहचान का सबब बन सकता है। किन्नर समुदाय दरअसल अपने परिवार द्वारा घोषित मृत समुदाय है। तभी जब फिर से कोई अपने घर वापस जाने की हिमाकत करता है तो वह अपने घरवालों द्वारा ही घर से गाँव के बाहर तक खदेर दिया जाता है, भद्दी भद्दी गलियाँ दी जाती है। परिवार और समाज से दुत्कारे जाने पर वह कहाँ जाए? उसकी क्या पहचान है? दैहिक अस्तित्व मात्र पहचान नहीं है। मात्र दैहिक अस्तित्व उसमे मानसिक उद्वेलन को जन्म देता है जिसमे बिन्नी उर्फ़ बिमली छटपटाती है और अपनी पहचान ढूंढती हुई जरूरी सवालों से रूबरू होती है। उसका अपनी बा को यह लिखना कि "कभी कभी मैं अजीब सी अँधेरी बंद चमगादड़ों से अटी सुरंग में स्वयं को घुटता हुआ पाता हूँ। बाहर निकलने को छटपटाता मैं मनुष्य तो हूँ न! कुछ कमी है मुझमें इसकी इतनी बड़ी सजा!" पहचान खो देने की ऐसी वेदना जो मन और कलेजे को छलनी किये रहती है और ऐसी मनस्थिति पैदा करता है जिसमे '..आँखों से खारा पानी नही,खून ढुरकने लगता है'। जाहिर है 'कोई कब तक लड़े अपने से,अपनों से'।

सामाजिक संवेदनहीनता

समाज आज संवेदन–शून्य होता जा रहा है। वह इस तबके को बहिष्कृत ही मानता है। अपने परिवार और समाज में उसके लिए कोई जगह नहीं है। अस्वीकार्यता की हद तब दिखती है जब बा अपने एक बड़े पुत्र से जो कि खुद पिता बनने वाला है, से पूछती है कि अगर खुदा न खास्ता बिन्नी उसकी औलाद होकर जनमता तब वह क्या करता? वह बिना देर किया उत्तर देता है 'दुनिया में आने से पहले ही मैं उसे रुखसत कर देता'। समाज यह बार–बार भूल जाता है कि वह कैसे जन्मे,यह उसका चुनाव नहीं है फिर हम इसकी सजा उसे क्यों देते हैं? फिर भी समाज उसे हिकारत की दक्षिणा देता है, समाज से बाहर करने का जहर सौंपता है। सब चुप–चाप, मूक–बधिर हो निहारते रहते हैं अपने ही जैसे मनुष्य को जिसे सामान्य लोगों की तरह जीवन जीने का अधिकार नहीं है। हम उन्हें ऐसे 'अँधे कुएं में धकेल देते हैं जहाँ सिर्फ सांप–बिच्छू रहते हैं। सांप बिच्छू बनकर वे पैदा नहीं हुए होंगे। बस इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया'। समाज उन्हें असामान्य और गलीज समझकर बहिष्कृत करता है जबकि उनमें भी सामान्य संवेदना और भावुकता होती है। इसका एहसास उन्हें लगातार होता रहता है लेकिन समाज में उपेक्षा का भाव उन्हें व्यथित करता है। उनका जननांग दोष इतना बड़ा हो जाता है कि हम उन्हें इंसान मानने से इनकार कर देते हैं। यह इनकार दरसल उनके पहचान का इनकार है। इस इनकार और अपने सामान्य होने को बिन्नी अपनी बा को ही नहीं बताता बल्कि अपने समाज को संबोधित करता है कि वह 'जो औरों की नज़रों में गलीज और असामान्य हैं लेकिन कितने आम और सामान्य हैं ठीक उनकी ही तरह संवेदनशील और भावुक असुरक्षा से घिरे'।

निष्कर्ष

उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203– नाला सोपरा किन्नर समुदाय की पहचान के लिए उनके संघर्ष को बिन्नी के माध्यम से सशक्त रूप से रेखांकित करता है। उपन्यास इस बात को स्पष्ट करती है कि सामान्य मनुष्यों के बीच

में सामान्य मनुष्य के रूप में ही उन्हें समाज की स्वीकृति मिलनी चाहिए। इसके लिए जरूरी है कि हम अपनी सोच बदले,संवेदनशील बनें। आधुनिक समाज के अंग के रूप में लिंगदोष को समाज के लिए कलंक नहीं माना जाए और कोई परिवार अपने बच्चे का त्याग नहीं करे। यह आसान नहीं है। उपन्यास अपने कथ्य में बिन्नी के माध्यम से ठीक ही कहता है कि 'समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते पर मुझे विश्वास है, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक़्त बदलेगा। वक़्त के साथ नजरिया बदलेगा'। उपन्यास'पोस्ट बॉक्स न. 203—नाला सोपारा' इसी उम्मीद की मंशा का संवाद है, उनके मनुष्य माने जाने का संघर्ष है, समाज के असामाजिक होने का कथ्य है।

सन्दर्भ सूची

1. मुद्गल, चित्रा, (2022) *पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा,* सामयिक प्रकाशन, पृ. 22।
2. मुद्गल, चित्रा, (2022) *पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा,* सामयिक प्रकाशन, पृ. 24।
3. मुद्गल, चित्रा, (2022) *पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा,* सामयिक प्रकाशन, पृ. 50।
4. मुद्गल, चित्रा, (2022) *पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा,* सामयिक प्रकाशन, पृ. 112।
5. मुद्गल, चित्रा, (2022) *पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा,* सामयिक प्रकाशन, पृ. 86।
6. मुद्गल, चित्रा, (2022) *पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा,* सामयिक प्रकाशन, पृ. 177।
7. मुद्गल, चित्रा, (2022) *पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा,* सामयिक प्रकाशन, पृ. 186।

——==00==——